आचार्यपद की महत्ता
श्री हस्तिमल जोशेंच्छा एवं श्रीमती शर्मिला जोशेंच्छा

तीर्थकर के प्रतिनिधि आचार्य होते हैं। वे 36 गुणों के धारक तथा आठ संपदाओं से
युक्त होते हैं। वे अग्नितार्थ साधुओं के कवच होने के साथ शिष्य को चार प्रकार का विनय
प्रदान करते हैं। आगमों में भी उनकी महिमा गायी गई है। आचार्य की अधिनियम आशातना
करने वाला शिष्य मर्मचुन्त हो जाता है तथा वुष्परिनाम भोगता है। आलेख आगमिक प्रमाणों
से उपेक्ष है। -सम्पादक

जह दीवा दीवस्यं पन्नपादं। शो य पांढपादं दीवी।
दीवसमा आयपिया अयत्वं च परं च दीवंति॥

निर्पूक्तिके आचार्य भद्रबाहु ने आचार्यों को उस दीपक की उपमा दी है, जो स्वयं प्रकाशित
होते हुए दूसरों को भी प्रकाशित करता है और जिससे अन्य सैकड़ों-सहस्रों दीप प्रदीप किए जा सकते हैं।
सुहृत्तं अभिगतेशांपं, जंजू नामं च कास्तं।
पभवं कृक्क्यां पंद्वं, वच्चं सिज्जं भरं तहा॥

(नवं तीर्थ, गाथा-25 युग प्रधान पद्मावली)

आर्य सूधर्मां से लेकर आज पर्यन्त दीर्घाविधि में हुई क्रमबद्ध आचार्य-परम्परा में हुए त्यागी
तपस्वी आचार्यों ने और उनसे ही संयम की सीख लेकर सहस्रों प्रभावक श्रमण-श्रमणियों ने प्राणिमात्र को
अभय देने वाले पंच महाजन रूप धर्म को अध्ययन, अध्यापन, प्रवचन, प्रख्यापन एवं गहन चिन्तन-मनन
के स्त्रें से सिखत कर अक्षुमा रखा है और अनन्त लोगों को सम्पर्क प्रदान कर प्राणिमात्र पर
अनुक्रम्य की है। उसी से आज तक भव्यजनों के हितार्थ कहा गया कल्याणकारी धर्म पंचम आरे में भी
पढा और आचरित किया जा रहा है।

सर्वज्ञ प्रभु महावीर ने तीर्थ प्रवर्तन काल में ही गणधरों को पद प्रदान करते समय आर्य सूधर्मा
को दीर्घाविधि समझकर दुर्गी के स्थान पर रख कर गण की अनुजा दी, अपना उत्तरोधिकारी बनाया।
‘पछी श्री बीर पाते पांचवा गणधर श्री सूधर्म र्मा पहले पाते थया।’
-बीर वंशावली/तपागच्छ वृद्ध पट्टावली-मुनि जिन विजय जी
‘भगवान् महावीर ने पहले पात पर श्री सूधर्म स्वामी निराय्या।’
-प्रभु बीर पट्टावली- मुनि मणिलाल जी- जैन धर्म का मौलिक इतिहास में उल्लेख।
प्रभु चीर सर्वज्ञ थे। उन्हें ज्ञात था कि नौ गणधर उनके जीवनकाल में ही अपना आत्मार्थ सिद्ध कर मोक्ष में चले जायेंगे। रोष इतने गौतम और सुधमण अंग गौतम स्वामी को भगवान के निर्वाण के बाद ही केवल ज्ञान हो जाता, अत: गौतम ऐसे कहते- “मैं ऐसा देखता हूँ, मैं ऐसा कहता हूँ.” जबकि कोई भी पटखंड अपने पूर्वजीयों आचार्य के आदेशों, आदर्शों एवं सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार करता है तथा आजादों का पालन करता है।

भगवान के निर्वाण के समय आर्य सुधमण चार ज्ञानधारी और 14 पूर्वक ज्ञान थे, केवल नहीं, अत: वे ऐसा कह सकते थे “भगवान् ने फर्माया है” अत: तीर्थकर महावीर द्वारा प्रकृति अथवा भगवान् के प्रथम पट्ट संयुक्त किया गया।

मूलतः ज्ञनेन्द्र भगवान् द्वारा श्यामावती तीर्थ की महता बतलाने के लिए आचार्य परमपरा स्थापित की गई। आचार्यों ने प्रवचन को सुरक्षित रखा और अपने-अपने उत्तराधिकारी को इस रूप में दिया- “सुरु भें मे आउंस, तेंग भगवता एवमक्रियां।”

हे आशुष्मन मैंने सुना है, उन भगवान के द्वारा ऐसा कहा गया है। जैनमणों में आचार्यों की महिमा का विविध स्थानों पर विविध रूपों में वर्णन है। “अत: भासिक अत: भासिक गणधर निउन।” तीर्थकर की वाणी मुक्त सुनम की वृष्टि के समान होती है, महान्त ग्राज्ञान गणधर उसे सुनकर रूप में प्रथित करके व्यवस्थित आगम का रूप देते हैं। इसलिए आगमों में वर्णित आचार्य-महिमागण को यह भी कह सकते हैं कि तीर्थकरों ने स्वयं अपने मुख से आचार्य महिमा गाइ है।

जैनमणों में आचार्य महिमा

व्याख्यानप्रदिस्सु, शातक 5, उद्देशक 6 में गौतम की पुस्ता पर प्रभु चीर के द्वारा गण-संस्कार तत्व एवं अपने कर्तव्य और दायित्व के भले-भाँति वहन करने वाले आचार्य और उपाध्याय के लिए एक, दो या अधिकाधिक तीन भवन में सिद्धात्र प्राप्त की प्रश्नण की गई है।

“शृवयमा! अत्थेवंहत तेन्पव भवभृण्यगणयं विष्णुवं अत्थेवंहत बोध्ययं भवभृण्यगणयं विष्णुवं, तच्च भुजु भवभृण्यो नातिबकुमांति।”

श्रव्य के आश्विन कृष्ण की बड़ी संधियों में वर्णित है “तीर्थकर भगवान को नमस्कार करके अपने धर्मार्थ जी को नमस्कार करता हूँ।”

“नमोत्पालाम मम धामवारियस्य धामोवदेशसंस्करस्”

अंतकृत शृवयमा के वर्ग 6, अध्याय 15 में अत्युक्त- गौतम संबंध में गौतम ने भगवान को आचार्य कहा है। “मे धर्मार्थ संस्कार और धर्मार्थ उद्देशक भगवान महावीर।”

“मम धामायारित धामोवदेशस्त्र भूगवं महावीरे जाव संपादितकाम।”

दशवैध्यकलिक सूत्र, अध्याय 9 विनय समाधि के द्वितीय उद्देशक, गाथा 12 में कहा है-
जो आयरिय प्रथम, सुस्वस्या वर्णभक्ताः।
तेस्सि शिक्षा पवित्रति, जालसिता हि पायवाः॥

जो शिष्य आचार्य और उपाध्याय की सेवा-शुभ्रूषा करने वाले हैं और उनकी आज्ञा का पालन करने वाले हैं, उनकी शिक्षा जल से सींचे गए बुध्वृक्षों के समान बढ़ती रहती है।

आचार्योंसूत्र, प्रथम श्रुतस्मन्ध वे अध्ययन 5 के उद्देश्य 5 में शास्त्रकार ने कहा है, “इस मनुष्य लोक में वे आचार्य मन, वचन और काया से गुण, इत्यादि संयम से युक्त, प्रभुद्व आगम जाता और आर्थ से विरंत महर्षि है- जो समाधिमय के इच्छुक और मोक्षमय में उद्धार करने वाले हैं।”

रामपपसेनीय सूत्र में राजा प्रदेशी ने संघार के समय आचार्य केशिकुमार को नमन किया है।

उववायज सूत्र में कोणिक द्वारा भगवान को परोख वन्दन में ‘धर्मचार्य’ शब्द का प्रयोग किया गया है।
अन्त्य के 700 शिष्यों ने संघारा ग्रहण करते हुए, अर्हतों और सिद्धों के बाद धर्मचार्य अन्त्य को नमन किया है।

आचार्यों की आठ सम्पदा

दशाश्रुतस्मन्ध की चौथी दशा और स्थानांग सूत्र के अष्टम स्थान में गणितसम्प्रदाय सूत्र में आचार्यों की आठ सम्पदाओं का वर्णन है। साधु-समुदाय, गण या गणच के स्वामी आचार्य, गणी या गणाधिपति कहते हैं और उनके गुणों के समूह को गणि सम्पदा। इन्हीं गुणों से आचार्य अपने मुख्य कर्त्तव्य ‘गण की रक्षा’ का निर्वाह करते हैं।

“इस खलु थेरेंहि भगवान्तेहि अत्तुभिवा गणितसंप्रदाय पत्ताला” (दशाश्रुतस्मन्ध)

स्थविर भगवानों के द्वारा कथित आठ गणितसम्प्रदाय इस प्रकार हैं—

1. आयरसंपत्ता (आयरसंपत्ता)— आयरसंपत्त आचार्य का व्यवहार शुद्ध होगा तो संयम की समृद्धि होगी।
2. सुधसंपत्ता (शुद्धसंपत्ता)— अनेकों का मार्गदर्शक एवं निर्भर विचरण करता होने के लिए आचार्य का बहुशुद्ध होना आवश्यक है।
3. सरीरसंपत्ता (सरीरसंपत्ता)— ज्ञान और श्रम भी शारीरिक सीलेश्व होने पर ही धर्म प्रभावित में सहायक होते हैं।
4. वचनसंपत्ता (वचनसंपत्ता)— आचार्य महाराज को आदेश, मधुर, आगम समस्त स्पष्ट एवं निष्पक्ष वचन बोलने चाहिए।
5. वचनसंपत्ता (वचनसंपत्ता)— वचनों के द्वारा बहुशुद्ध गीतार्थ प्रतिभा सम्पत्ति शिष्यों को तैयार करना भी आचार्य का गुण है।
6. मतिसंपत्ता (मतिसंपत्ता)— औपचारिक, वैष्णोक, कामिकी और पारिषद्मिकी इन चार प्रकार की
बुद्धियों से आचार्य सम्पन्न होते हैं।

7. पापोसंपंज्य (प्रयोगमति-संपंज्य) - पश्च-प्रतिपक्ष युक्त शास्त्रार्थ के समय वाद प्रवीणता, बुद्धि कुशलता होनी चाहिए।

8. संगहपरिणाम-संपंज्य (संग्रहपरिणाम-संपंज्य) - आचार्य संघ-व्यवस्था में प्रिपण हो। अध्ययन, विनय, विचारण, समाचार की सुव्यवस्थित रखें।

अग्नितार्थ साधु के कवच आचार्य

व्यवहारसूत्र के उद्देश्य 6 में अग्नितार्थ साधु के अनेके रहने का निषेध किया गया है। उसे आचार्य के चरणों में रहना चाहिए।

आचारांसूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध, अध्ययन 5 के चतुर्थ उद्देश्य में अन्यत्र साधु के द्वारा आचार्य में एक मात्र दृष्टि रखने, उनके द्वारा प्ररूपित मुक्ति में मुक्ति मानने और उनके साँचिद्ध में रहने का संकेत किया गया है। ‘एवं कुसलस्स दंशण’ यह कुशल महावीर का दर्शन है। आचारां सूत्रा में-

तभ चाहिया तथ्यं पद्धार्थं धनकार्ट्रि अवधािमकं हरेत्ज्या।

जैसे नवजात पश्चात्तिक पक्ष को धनकार्ट्रि पक्षों से भय रहता है। भैस ही अन्यत्र अग्नितार्थ को अन्यतिधिकों का भय बना रहता है। ये भय समय में आचार्य ही अग्नितार्थ के रक्षा कवच होते हैं।

विनय प्रदत्ता आचार्य

दशगुरूल स्कन्ध- की चौथी दशा में आचार्य शिष्य को चार प्रकार का विनय सिखाते हैं।

1. आयार-विनायक (आचार्यविनय) - वे महाराज, समिति-गुप्ति, विधिक-निषेध, तप, समाचारी एवं एकाकी विहार का ज्ञान कराते हैं। शिष्यों को व्यवहार का विनय सिखाते हैं।

2. सुक्ष-विनायक (सुखविनय) - शिष्यों को बुद्धित बनाने के लिए सूक्ष्मस धर्म की समुचित वाचना देते हैं।

3. विक्रेतव्य-विनायक (विक्रेतव्यविनय) - यथार्थ संयमधम एवं उसमं स्थिर रहना सिखाते हैं।

4. दोस्त-निगमकण विनायक (दोष निर्माण विनय) - शिष्य समुदाय में उपन दोषों को दूर करते हैं।

तिथियों तार्कियों आचार्य महाराज

पंचम काल में आचार्य महाराज स्वयं संसार सागर से तिरते हैं तथा दूसरों को तिराते हैं।

आचारां सूत्र के प्रथम श्रुत स्कन्ध के पंचम अध्ययन के पंचम उद्देश्य में सूत्र 166 में आचार्य महिमा का वर्णन है। शास्त्रकार कहते हैं, “जैसे एक जलाशय/ हुद जो जल, कमल से परिपूर्ण अनेक जलचर जीवों का संरक्षक होता है। इसी प्रकार आचार्य की महिमा है।” व्याख्या में आचार्य को सीता और
10 जनवरी 2011

जिनवाणी

सीतोदा नामक नदियों के प्रवाह में स्थित हुद के समान बताया है जिसमें से जल प्रवाह निकलता भी है और गिलता है। इसी भाषी आचार्यों में दान और आदन दोनों है। वे शास्त्रज्ञ एवं आचार रुप में उपदेश देते भी हैं तथा स्वयं भी ग्रहण एवं आचरण करते हैं। इस प्रकार वे 'तिनाण' भी हैं और 'तारयाण' भी।

सुधर्म स्वामी से लेकर आज तक परममहत्व रूप से आचार्य प्रभुवीर की जन-कल्याण हेतु दी गई जिनवाणी को ही नगर-डगर जन-जन तक पहुँचा रहे हैं। ऐसे में आचार्यों की राह पर चलना तो प्रभु महाराज की राह पर चलने के समान है।

कुशल नेतृत्वकर्ता आचार्य वह मजबूत धृति है, जिसके सहाये अनेक संसंग्रह निरंतर घुमता हुआ प्रगति करता है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल चरण बढ़ाता है।

आचार्य महाराज के 36 गुण

ज्ञानीजनों ने आचार्य के 36 गुण प्रकट किए हैं, इनमें जिलने गुण उत्कृष्ट होते हैं उतना ही आचार्य धर्म-प्रभावक होता है, यथा-

1. जाति सम्पत्त 2. कुल सम्पत्त 3. बल सम्पत्त
4. रूप सम्पत्त 5. विनय सम्पत्त 6. ज्ञान सम्पत्त
7. शुद्ध श्रद्धा सम्पत्त 8. निर्मल चारित्र 9. लज्जाशील
10. लाभ सम्पत्त 11. ओजस्वी 12. तेजस्वी
13. वर्चस्वी 14. यशस्वी 15. जित क्रोध
16. जित मान 17. जित माया 18. जित लोभ
19. जितेन्द्रिय 20. जित निदा 21. जित तपोध
22. जीविताशा मरण भव विप्रस्वस्त 23. भ्रत प्रधान 24. गुण प्रधान
25. करण प्रधान 26. चरण प्रधान 27. निग्रह प्रधान
28. निश्चय प्रधान 29. विद्या प्रधान 30. मंत्र प्रधान
31. वेद प्रधान 32. ब्रह्म प्रधान 33. नय प्रधान
34. निर्म प्रधान 35. सत्य प्रधान 36. शौच प्रधान

अन्य विवेक से भी आचार्य भगवतों के 36 गुण कहे गए हैं- 5 महाराज का पालन, 5 आचार का पालन, 5 इन्द्रियों का संत्व, 4 कषय का त्याग, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन, 5 समिति, 3 गुस्सा (अप्स प्रवचन माता का आराधन-पालन) इन 36 गुणों से पूर्ण होते हैं।

आचार्यों के प्रति शिष्यों का विनय-व्यवहार-

गुण और गणी के प्रति योग्य शिष्य के प्रमुख कर्त्त्वद दशानुशस्त्र-कथा की चौथी दशा में बताए गए हैं, यथा-
1. उपवरण उप्यावन्य (उपकरण उत्पादन) - उपकरण संयंत्री कर्मवालन। गोवेशण करके वस्त्र, पात्र, उपकरण प्राप्त करना, फिर सुरक्षित रखना, जो जिसके योग हो उसे गुरु आज्ञा से यथायोग्य देना।

2. साहिल्लण्या (सहायक होना) - गुरूज्ञों के अनुकूल हितकारी वचन बोलना, शारीरिक हलन-चलन विवेक से करना, सेवा करना, रचिकर व्यवहार करना।

3. वणनसंज्ञलण्या (गुणानुवाद) - आचार्यांदे का गुणकीर्तन करना। अर्थवादी को प्रत्युत्तर देकर निर्दय करना, सेवा-भक्ति करना एवं यथोचित आदर देना।

4. भारप्रक्षोरण्या (भार प्रत्यारोहण) - आचार्य के कार्यभार को सम्हालना, धर्म-प्रचार, शिष्यों को शुद्ध आचरण का अभ्यास कराना, विवाद निराकरण एवं गण के साधु-साधियों की संन्यास-समाधि की उत्तरोत्तर वृद्धि के प्रयास करना।

आचार्यों की अधिन्य आश्वात्सान का दुष्परिणाम -

धर्माचित्रां च ववहारां बुझेहायरियं सया।
तमायंतो ववहारं भरहं नाखिगतं।
-उत्तराध्ययन ७३, अध्ययन १, गाथा-४२

धर्माचित्र व्यवहार सदा आचार्यों ने आचरित किया।

गर्हं को प्राप्त नहीं होता, जिसमें वैसा आचरण किया।

तीर्थकर के अभाव में साधक के पथ प्रदर्शक आचार्य की जो अविनय आश्वातना और अवहेलना करते हैं उनके लिए उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन 'विनय श्रुति' में कहा गया है, आज्ञा पालन और से श्रुत्रां से दूसरे भागने वाला साधु मिथ्या आलोचक, अविनीत, दुर्व्योग होकर सभी प्रकार के उत्तम लाभों से वंचित रहता है एवं दुष्परिणाम भोगता है।

दूसरे विचार आचरण स्वभाव वाले शिष्य को "जहा सुनी पूछ कण्णी" (उत्तराध्ययन, प्रथम अध्ययन, गाथा-४) सड़े कान वाली कुतिया की तरह गन, गच्छ, संघ सभी से तिस्कर पूर्वक निकाल दिया जाता है। उत्तम शील को छोड़कर आचरण का अविनय करने वाला दु:शील में सम्प्रय करता है।
(उत्तर. 1.5) दशवैकालिक सूत्र, अध्ययन-९ विनय समाधि, उद्देशक-१ में गुरु एवं आचरण की अविनय आश्वातना के दुष्परिणाम दिए गए हैं, यथा-

जो यावि मंदिरि मुक्ति विज्ञाता, ठहरो इम्यो अप्यक्षुः लिग पंचमा।
हीलंगे मिलेत्ते पारिवर्ज्ज्यमणा, कर्तव्ये आसार्यमाने ते गुरूः। (गाथा-२)

जो शिष्य गुरु को अल्पवृत्त और मंद बुद्धि जानकर गुरु की हीला करते हैं वे अपने ज्ञानार्थ भाव की कमी करते हुए मिथ्यालय भाव को प्राप्त होते हैं।
एवायरियं नियमविग्रहखं जाई पहं खु तंद्रो।। (गाथा-४)
अर्थतः आचार्य का अनादर करने वाला मंडल का एकेक्रित आदि विविध जातियों, योनियों में जन्म नहीं प्राप्त करता है।
आयरियपाया पुष्प कर्मवाणण अर्धोषि-आरात्याण पालिका मुक्तः।। (गाथा ५,१०)
अर्थतः आचार्य दर्शन की अपराधी का अन्तिम जन्म नहीं होता है। अतः आचार्य की अविनय आसातन या अवहेलना करने वालों को समय की दर्शन आदि आत्मगुणों की प्राप्ति नहीं होती, उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता।

नं या वि मुक्तः शुद्ध हीन्नाताः।। (गाथा-७)
अतः गुरु आशातन को हानिप्रद जानकर उन दोषों से विरह रहने वाला साधु गुरु-इच्छा के अनुरूप चलने में एवं शुद्ध-चारित्र की आधारण में उद्धर्गमी बनकर संसार में पूजनीय होता है।

भगवतीमूर्ति शतक २०, उद्देशक ८ के अनुसार भगवान महादेव का यह शासन पंचम आरे के चरम दिवस तक इतनी आचार्यों की धर्म प्रभावना से जयवंत रहेगा।

पंचम आरे के अंत में भी एक साधु, एक साध्वी, एक श्रावक, एक श्राविका रहेंगे जो एकभवतारी होंगे।

सम्यक्त्व प्रदान करने वाले उन सत्युक्तों के उपकार से यह जीव अनेक जन्मों तक करोड़ों प्रकार के उपकार करके भी उत्न्त नहीं हो सकता। जगत् के उन समस्त ज्ञानवान-क्रियावान आचार्य भगवतों के पावन सरोजों में हृदय की असीम आस्था के साथ सादर समपित।

‘अरुकुर्’ एम-५१-ए, आराना साजर लिक रोड, अरजेन्सर-३०५००१ (राज.)